शिक्षा में भाषा और संस्कृति को भी जोड़ें

शिक्षा और संस्कृति का बड़ा गहरा रिश्ता है। दोनों ही एक दूसरे को रचती हैं और उस प्रक्रिया में भाषा माध्यम बनती है। संस्कृति की सबसे प्रबल अभिव्यक्ति भाषा में होती है और शिक्षा भी भाषा के बिना अकल्पनीय है। भाषा हमारे सम्प्रेषण को संभव बनाती है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अच्छे सम्प्रेषण की कितनी अहमियत है, यह बताने की जरूरत नहीं है। एक बहुभाषिक देश होने के कारण भारत में भाषा-प्रयोग की दृष्टि से एक बड़ी चुनौती उपस्थित होती है। यहां कई तरह की भाषाएं हैं। एक ओर तो संस्कृत, तमिल तथा फारसी जैसी भाषाएं हैं, जिनकी बड़ी प्राचीन परंपराएं हैं और विपुल साहित्य है। दूसरी ओर कुछ ऐसी भी भाषाएं हैं, जिनकी कोई अपनी लिपि नहीं है और वे अब भी मौखिक रूप में ही प्रचलित हैं। औपचारिक रूप से भाषा का प्रश्न हमारे संविधान का मामला है। संविधान की आठवीं अनुसूची में कुल बाईस भाषाओं को शामिल किया गया है। ये सभी भाषाएं भारत के विभिन्न क्षेत्रों की सांस्कृतिक विशिष्टता को संजोए हुए देश की बहुरंगी छटा प्रस्तुत करती हैं। भाषा और संस्कृति की विविधता भारतीय जीवन की एक बड़ी सच्चाई है, जिसे सदैव याद रखना आवश्यक है। भाषा और उसके साहित्य में कला, परंपरा, संस्कार और साहित्य के साथ पूरी संस्कृति जीवंत रहती है, अगली पीढ़ी तक पहुंचती है और समाज को उसका एक प्रबल आधार प्रदान करती है।

गिरीश्वर मिश्र

कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

आजकल प्रायः यह चिंता व्यक्त की जाती है कि धीरे-धीरे भारतीय जन सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति या तो तटस्थ हैं या फिर उदासीन होते जा रहे हैं। उनमें व्यापक समाज या व्यष्टि की चिंता घटती जा रही है। इसके स्थान पर व्यक्ति की सत्ता का ज्वार तीव्र होता जा रहा है। दूसरों की चिंता की गैर मौजूदगी और घृणा का भाव समग्र समाज के विकास की दृष्टि से घातक है। आज जनसभाओं में नेता जिस तरह की भाषा का प्रयोग करते नजर आ रहे हैं, उससे यह बात और भी स्पष्ट हो चली है कि भारतीय भाषाओं का क्षरण और मूल्यों के क्षरण, दोनों की वृद्धि समानांतर गति में चल रही है।

मूल्यों के क्षरण को थामने के लिए औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था में कोई जगह कैसे बने, यह एक यक्ष प्रश्न-सा बन गया है। यह सोचना जरूरी हो गया है कि इस काम में भाषा क्या कर सकती है? हम भाषा की सहायता से क्या सामाजिक-सांस्कृतिक एका की ओर बढ़ सकते हैं? 'मेरा' और 'मैं' पर केंद्रित आज की स्वार्थ-वृत्ति जग जाहिर है। इसी तरह क्षेत्र, भाषा, धर्म और जाति की संकीर्णता भी सामाजिक जीवन पर हावी हो रही है। आज एक तरह की होड़-सी मच रही है और प्रत्येक जाति और समुदाय अपने को बड़ा स्थापित करने के लिए उद्यत है। स्मरण रहे कि मात्र भूगोल ही संस्कृति को नहीं तय करता है और संस्कृति एक संश्लिष्ट अवधारणा है। विभिन्न संस्कृतियों में क्या समानता और निकटता है, इसे भी समझना जरूरी है।

भाषा के अध्ययन के क्रम में संस्कृति का भी परिचय मिले और सांस्कृतिक संवेदना को पनपने का अवसर मिले, तो कुछ बात बन सकती है। सांस्कृतिक अपरिचय और असहिष्णुता के बढ़ते दायरे से निपटने के लिए भाषा और संस्कृति को शिक्षा में प्रतिष्ठित करना एक महत्वपूर्ण शैक्षिक हस्तक्षेप होगा। भाषाओं की विविधता और उनके बीच संवाद स्थापित करते हुए यह काम किया जा सकता है। दुर्भाग्य से भाषा के प्रति आज हमारा दृष्टिकोण बड़ा चलताऊ किस्म का हो गया है और उसके अच्छे परिणाम नहीं हैं। कला, विज्ञान, प्रौद्योगिकी सभी क्षेत्रों के अध्ययन-अध्यापन में भाषा को जो महत्त्व मिलना चाहिए, वह नहीं मिल रहा है। अच्छा तो तब होता, जब भाषा के अध्यापक ही नहीं, किसी भी विषय के अध्यापक को भाषा-प्रयोग की दृष्टि से समर्थ बनाया जाता। एक सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ भाषा को सीखने-सिखाने के प्रश्न को प्रभावी ढंग से शिक्षा का हिस्सा नहीं बनाया गया। परिणाम यह है कि भाषा और साहित्य को पढ़ने जाने वाले छात्र प्रायः वे ही हुआ करते हैं, जिन्हें विज्ञान, प्रौद्योगिकी, वाणिज्य जैसे अर्थकारी विषय में दाखिला नहीं मिल पाता है।

भाषाओं को लेकर कई तरह के भ्रम भी फैले हुए हैं। उदाहरण के लिए अंग्रेजी को ही समर्थ, उपयोगी और अर्थकारी भाषा माना जा रहा है। उसे पढ़ाने के लिए देशी-विदेशी, दोनों तरह के जाने कितने संस्थान खुले हैं और बड़े पैमाने पर इसका प्रचार हो रहा है कि अंग्रेजी 'कामधेनु' है। यदि अंग्रेजी की महारत पा ली, तो इस जन्म में जो चाहोगे, वह सब सरलता से सुलभ हो जाएगा। दूसरी ओर भारतीय भाषाओं के लिए कोई चिंता नहीं है। हम मान बैठे हैं कि भारतीय भाषाएं तो जन्मजात हैं, उनके लिए पढ़ने-लिखने की, देखभाल की कोई खास आवश्यकता नहीं है, न ही उनका कोई व्यापक उपयोग है। पर यह कोरा भ्रम है। आज आवश्यकता है कि संस्कृति के विभिन्न और बहुआयामी रूप को उजागर करने वाले पाठ भाषा के अध्ययन में शामिल किए जाएं। उनके माध्यम से देश में पारस्परिक सांस्कृतिक निकटता को सुदृढ़ किया जा सकता है। कविता, कहानी, नाटक, लोककला और लोकोक्तियां इसके लिए अच्छे माध्यम साबित होंगे। चूंकि भाषा में संस्कृति का जीवन स्पंदित होता है, इसलिए भाषाओं की रक्षा और संवर्धन आवश्यक है। भाषाएं न छोटी होती हैं न बड़ी, हमें सभी भाषाओं को समान आदर देना चाहिए।

कला, विज्ञान, प्रौद्योगिकी सभी क्षेत्रों के अध्ययन-अध्यापन में भाषा को जो महत्त्व मिलना चाहिए, नहीं मिल रहा है। अच्छा तो तब होता, जब भाषा के अध्यापक ही नहीं, किसी भी विषय के अध्यापक को भाषा-प्रयोग की दृष्टि से समर्थ बनाया जाता।